आदर्श और यथार्थ

जीवन और जगत में जो होना चाहिए वह आदर्श है और जो है यानि प्रत्यक्ष रूप में मौज़ूद है , वह यथार्थ है। मानव जीवनआदर्श-कल्पना और यथार्थ-बोध दोनों से परिचालित होता आया है। यथार्थ और आदर्श की स्थिति मानव जीवन के प्रसंग में वैसी ही है जैसी किसी नदी के दो तट। इस ओर का तट, जो प्राप्त है यथार्थ है तथा उस ओर का तट, जिस तक अभी पहुंचना, आदर्श है। बुद्धितत्त्व को प्राथमिकता देता है और यथार्थवाद वस्तु-तत्त्व को महत्त्व प्रदान करता है।

साहित्य के क्षेत्र में आदर्शवाद एक ऐसी कल्पना अथवा विचार है जिसमें अस्तित्त्व की पूर्णता की धारणा निहित रहती है जबकि यथार्थवाद, जीवन-जगत की वास्तविकता है। वैसे, आदर्श और यथार्थ के बीच की भी एक स्थिति है जिसे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा जाता है और जिसे प्रेमचंद के शुरूआती कथा साहित्य जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि प्राचीन या मध्य युग में साहित्य आदर्शवादी था जिसमें जीवन की कल्पना व्यक्त हुई है। युग का वास्तविक चित्रण आदर्शवाद के लिए पृष्ठभूमि के समान प्रयुक्त हुआ है। जैसे, 'अभिज्ञानशाकुंतलम' की यथार्थ करुणा प्रेम की आदर्शमयी भव्यता की पूर्व-सूचना है। इसी प्रकार रामराज्य का आदर्श राम के कठिन जीवन-संघर्ष के यथार्थ की ही चरम परिणति है। किन्तु वर्तमान आधुनिक युग यथार्थवाद का युग है। आज मनुष्य की दृष्टि 'क्या होना चाहिए' की अपेक्षा 'क्या है' पर है।

प्रायः ऐसा भी माना जाता है कि यथार्थ और आदर्श में संघर्ष है तथा दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। यथार्थवाद में आदर्शों का निषेध नहीं है बल्कि भाववाद का निषेध है। सवाल यह है कि किस

तरह के आदर्श समाज के लिए उपयुक्त हैं। मसलन, गांधीवादी आदर्शवाद यदि व्यक्ति के हृदय परिवर्तन पर बल देता है तो मार्क्सवादी आदर्शों से प्रेरित रचनाकार समाज के आमूल-चूल परिवर्तन पर बल देता है।

उपन्यास में आदर्श और यथार्थ विषय पर प्रेमचंद ने काफी विचार किया है। उनकी पूरी रचना यात्रा इन दोनों शब्दों से जुड़ी हुई है। वे कभी आदर्श से यथार्थ की ओर बढ़ते हैं तो कभी यथार्थ से आदर्श की ओर। उनके यहाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और यथार्थोन्मुख आदर्शवाद दोनों है।

प्रेमचंद उपन्यास से अपेक्षा करते हैं कि वह यथार्थ और आदर्श में एक तरह का समन्वय स्थापित करे क्योंकि दोनों समान रूप से ज़रूरी हैं। वे कहते हैं- ***'यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों की पूर्ति मात्र हो, जिसमें जीवन न हो।'***

प्रेमचंद दोनों का महत्व बताते हैं पर उनकी सीमा भी बताते हैं। उनका मानना है कि 'वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो।'

उपन्यास और यथार्थवाद

उपन्यास आधुनिक गद्य की एक प्रमुख विधा है जिसका जन्म 18वीं शताब्दी में पूंजीवादी व्यवस्था के जटिल परिवेश में हुआ। उपन्यास का मूल तत्व यथार्थ का चित्रण है और इसी अर्थ में इसे पारंपरिक कथाओं से अलग माना गया है।

उपन्यास आधुनिक जीवन के यथार्थ को बहुत निकटता से पहचानने और उपस्थित करने वाली विधा है। यह जीवन के यथार्थ को बहुत सहजता से उभारने वाली विधा है। उपन्यास की कथा काल्पनिक होती है लेकिन वह जीवन के यथार्थ की ही कथा होती है। उसके पात्र जीवंत और यथार्थ होते हैं, घटनाएँ हमारे जीवन के बीच की होती हैं और उनमें एक तार्किक संगति होती है। इस अर्थ में उपन्यास वस्तुतः जीवन की यथार्थ घटनाओं की ही कल्पनापरक प्रस्तुति है।

साहित्य में यथार्थवाद एक ऐसी विशिष्ट चिन्तन-पद्धति है जिसके अनुसार, रचनाकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का चित्रण करे। वस्तुतः यथार्थवाद सुधारक व परिवर्तनकारी साहित्य का प्रथम अस्त्र है।

यथार्थवाद ने उपन्यास की संरचना पर कई तरह से प्रभाव ड़ाला है। अपने आरंभिक रूप में यथार्थवाद के प्रभाव में उपन्यासकारों ने समाज के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि को ज्यादा तरजीह दी, उन्होंने सामाजिक परिवर्तन पर जोर दिया।

हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद

यथार्थवादी प्रवृतियां सभी देशों के साहित्य में दिखाई पड़ती हैं। हिन्दी साहित्य में यथार्थवादी प्रवृतियां मध्यकाल से ही दिखाई देने लगती हैं।

आधुनिक अर्थ में यथार्थवाद का हिन्दी साहित्य में प्रथम विकास 'प्रगतिवाद' के माध्यम से हुआ। इसके तहत कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी रूपों में आधुनिक जीवन के गहरे संघर्षों, विद्रुपों, अंन्तर्द्वन्द्वों तथा कुरूपताओं का अंकन हुआ।

इस युग के दो विचारकों-मार्क्स तथा फ्रायड ने अपने-अपने ढ़ंग से यथार्थवाद के विकास में सहयोग दिया। मार्क्स ने सामाजिक जीवन के कटु यथार्थ की ओर संकेत किया तो फ्रायड ने वैयक्तिक जीवन की गर्हित कुंठाओं की ओर ध्यान दिलाया।

हिन्दी उपन्यास यात्रा में प्रेमचंद्र-पूर्व उपन्यासों में यथार्थवादी प्रवृति की परंपरा विकसित नहीं हो सकी थी। इस काल में लिखे गए सामाजिक उपन्यासों ने यथार्थवादी प्रवृति के विकास हेतु एक जमीन तैयार करने का कार्य किया। यह काल राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना की दृष्टि से जागृति एवं सुधार का काल रहा है।

सन् **1918** से **1936** ई. का समय भारतीय स्वाधीनता संघर्ष और समाज सुधार संबंधी आंदोलनों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। महात्मा गांधी भारतीय राजनीतिक मंच पर सूर्य की तरह उदित हो गए थे। उनके सत्य, अहिंसा, सदाचार, अस्पृश्यता विरोध, स्त्रियों की उन्नति, ग्राम सुधार, अछूतोद्धार, स्वदेशी आदि से संबंधित विचारधारा का जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ने लगा था। अन्याय-उत्पीड़न के खिलाफ विरोध की नई शक्ति का उदय, उत्पीड़क समाज, समान्त वर्ग, सरकारी अधिकारी, पूंजीपति आदि से टक्कर लेने का साहस, रूस की जनजागृति, विज्ञान के अभूतपूर्व आविष्कार आदि का हमारे जन-जागरण पर जो प्रभाव पड़ा उससे समाज यथार्थोन्मुख और वर्गीय समझ से भी संपन्न हुआ।

अतः अब कल्पना, रोमांस एंव चमत्कार-प्रदर्शन के इन्द्रजाल से मुक्ति मिली और हिन्दी उपन्यासकार यथार्थ की कठोर भूमि पर खड़े होकर समाजोपयोगी साहित्य की रचना में प्रवृत्त हुआ। इस नई रचना-दृष्टि के संवाहक थे- मुंशी प्रेमचंद्र।

प्रेमचंद ने अपने समय के सामाजिक रानीतिक यथार्थ को अपने अनेक उपन्यासों में बड़ी गम्भीरता एवं मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'गोदान' जैसे उपन्यासों से प्रेमचंद ने हिन्दी भाषी जनता का न केवल मानसिक संस्कार किया बल्कि युगीन सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों का पूर्ण चित्रण भी किया।

वैसे, प्रेमचंद के उपन्यासों में आदर्शवाद और यथार्थवाद का अद्भुत मेल है। उनके आरंभिक उपन्यासों में जहाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की अभिव्यक्ति हुई है, वहीं 'गोदान' में उनका आदर्शवाद पूरी तरह बिखर गया है और उसका स्थान ले लिया है क्रूर यथार्थ ने। यहाँ तक आते-आते गाँधी के प्रभाव से हृदय परिवर्तन का भी सिद्धान्त पूरी तरह निष्फल हो गया है।

प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है- दलितों के प्रति सहानुभूति और करूणा तथा उनके जीवन संघर्ष की प्रमाणिक एवं मार्मिक अभिव्यक्ति। हिन्दी साहित्य में जनचेतना और जनपक्षधरता का इतना बड़ा कोई दूसरा उपन्यासकार नहीं दिखाई पड़ता।

प्रेमचंद से प्रभावित होकर विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', शिवपूजन सहाय, भगवती प्रसाद वाजपेयी, राजा राधिका रमण सिंह, सियारामशरण गुप्त आदि ने सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ वाले उपन्यासों की रचना की।

प्रेमचंद युग में ही जयशंकर प्रसाद ('कंकाल', 'तितली', इरावती) निराला ('बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्लीभाट') के उपन्यासों से प्रेमचंदयुगीन सामाजिक चेतना को एक नया आयाम दिया।

प्रेमचंद के बाद हिन्दी उपन्यास में मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों की एक ऐसी पंक्ति तैयार हुई जिसने हिन्दी को अनेक श्रेष्ठ उपन्यासों से समृद्ध किया है। जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय उस परंपरा के अग्रणी रचनाकार हैं। फ्रायड, एडलर और युंग की मनोविश्लेषण संबन्धी मान्यताओं का इन लेखकों पर गहरा प्रभाव है।

सन् 1941 ई- में यशपाल का 'दादा कामरेड' प्रकाशित हुआ। यशपाल के उपन्यास पर मार्क्सवादी विचारधारा और यथार्थवादी शिल्प का गहरा प्रभाव था। प्रेमचंद के बाद यशपाल, नागार्जुन, मन्मथनाथ गुप्त, रांगेय राघव आदि उपन्यासकारों ने यथार्थवादी परंपरा का समुचित विकास किया।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी में ऑचलिक उपन्यासों की रचना की विशेष प्रवृति का उदय हुआ। इसकी शुरूआत का श्रेय फणीश्वरनाथ रेणु को है। 'रेणु' ने 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' जैसे उपन्यासों की रचना की। प्रेमचंद के बाद हिन्दी उपन्यास में से जो गॉव गायब हो गया था, उसे रेणु ने नए सौन्दर्यबोध और रागात्मकता के साथ चित्रित किया। उनके बाद कई उदयशंकर भट्ट (कब तक पुकारूँ), रामदरश मिश्र (पानी के प्राचीर), राही मासूम राजा (आधा गाँव), श्रीलाल शुक्ल (राग दरबारी), शैलेश मटियानी (कबूतर खाना) आदि ने आँचलिक उपन्यासों की रचना की।

यथार्थ की यह चेतना हिन्दी उपन्यास में कई रूपों में अभिव्यक्त हुई, कभी आधुनिकताबोध के रूप में, कभी यथातथ्यवाद के रूप में, कभी तो मार्क्सवाद और जनवाद के रूप में।

आधुनिकतावाद, नगरीकरण की तीव्र प्रक्रिया, पूँजीवादी लोकतंत्र से मोहभंग, अस्तित्ववादी दर्शन तथा पश्चिमी प्रभाव के फलस्वरूप पैदा हुआ। इसके प्रभावस्वरूप पारंपरिक मूल्य बिखर गये, सामाजिकता की जगह वैयक्तिकता का प्राधान्य हो गया और व्यक्ति अपनी असमर्थताओं-असफलताओं से घिरकर हताश, निराश व कुंठित हो गया।

सातवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में आधुनिकताबोध की ये सभी प्रवृतियाँ परिलक्षित हुई है। इस दृष्टि से मोहन राकेश (अंधेरे बंद कमरे), निर्मल वर्मा (वे दिन), उषा प्रियवंदा (रूकोगी नहीं राधिका), शिवप्रसाद सिंह (अलग-अलग वैतरणी), ममता कालिया (बेघर), मन्नू भण्डारी (आपका बंटी) आदि के उपन्यास पठनीय हैं। इन उपन्यासों का व्यक्ति अकेला, ऊबा हुआ, संËस्त, व्यर्थताबोध से पीड़ित, अजनबियत से घिरा हुआ और थका-हारा ऐसा व्यक्ति है जिसको कोई भविष्य दिखाई नहीं देता, न कहीं आशा-उत्साह की कोई किरण दिखाई पड़ती है।

इन उपन्यासों के विपरीत प्रगतिवादी विचारधारा से संपन्न आठवें दशक के उपन्यासकारों की वह परंपरा है जिसका संबंध प्रेमचंद की जनवादी परम्परा से है। इस दृष्टि से श्रीलाल शुक्ल (राग दरबारी), बदीउज्जमा (एक चूहे की मौत), गिरिराज किशोर (जुगलबंदी), राही मासूम राजा (कटराबी आरजू), कृष्ण सोबती (जिन्दगीनामा), मन्नू भंडारी (महाभोज), मनोहर श्याम जोशी (कुरू-कुरू स्वाहा) आदि के उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

इन उपन्यासों में राजनीतिक उठापटक, लोकतंत्र की छीछालेदर, ग्रामीण जीवन की रेंगती-घसीटती जिंदगी, जातिवादी संघर्ष, साम्प्रदायिक विद्वेष, उन्माद और संघर्ष, मुर्दा होते हुए सामाजिक संबंध, युवा विद्रोह आदि का जीता जागता चित्र उपस्थित किया गया है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास में किसी खास प्रवृति या विचारधारा का प्रभाव या दबाव नहीं है। इन उपन्यासों में विषयगत विविधता तो है ही, शिल्पगत नवीनता और प्रयोगशीलता भी विद्यमान है। इसलिए ये उपन्यास किसी परंपरा में अन्तर्भुक्त ने होकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाते हैं। 'कुरू कुरू स्वाहा' की रोमैण्टिक कथा और बम्बइया हिन्दी कथा का अलग रंग है तो 'कसप' में उत्तर आधुनिकता की झाँकी विद्यमान है।

'झीनी झीनी चदरिया' (अब्दुल बिस्मिल्लाह) में बनारस के बुनकरों का जीवन-यथार्थ और संघर्ष उन्हीं की बोली-वाणी में है तो 'सूखा बरगद' (मंजूर एहतेशाम) में हिन्दू-मूस्लिम संबंध, 'डूब' (वीरेन्द्र जैन) में मध्यप्रदेश के पिछड़े अंचल की व्यथा-कथा है। अन्य विधाओं के रचनाकारों की अपेक्षा वर्तमान उपन्यासकार वैचारिक कठमुल्लेपन और सीमित जीवनानुभव की बंदिशों से काफी मुक्त है।

शशिप्रभा शास्त्री, शिवानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मेहरूनिन्सा परवेज, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्र मुद्गल, सूर्यबाला, प्रभा खेतान आदि महिला उपन्यासकारों ने भी सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ पर जैसी विचारोंत्तेजक कृतियाँ दी हैं, उनसे साफ तौर जाना जा सकता है कि उनके पास अनुभव-वैविध्य भी है और रचनाकार दृष्टि भी। 'आपका बंटी', 'नरक दर नरक', 'जिन्दगीनामा' जैसे उपन्यास समकालीन हिन्दी उपन्यास के यथार्थ को प्रत्येक दृष्टि से समृद्ध करने वाले उपन्यास हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों में यथार्थवाद

हिंदी कथा-साहित्य में प्रेमचंद का उदय एक युग प्रवर्तक एवं अविस्मरणीय घटना है। वे ऐसे पहले कलाकार हैं जो हिंदी कथा-साहित्य को मनोरंजन, तिलिस्म और रोमांस की दुनिया से बाहर लाकर जीवन की सामाजिक अर्थवत्ता से जोड़ते हैं। उपन्यास की यथार्थवादी परंपरा को हिन्दी में लाने का श्रेय प्रेमचंद को ही दिया जा सकता है। प्रेमचंद के उपन्यास प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि तथा गोदान कृषक जीवन के यथार्थ पर ही लिखे गये हैं।

प्रेमचंद यथार्थ के लिए 'सच्चाई' शब्द का इस्तेमाल करते हैं। उनके अनुसार यथार्थ की हू-ब-हू नकल करने में न तो कोई कला है और न ही यथार्थवाद। अर्थात् वे वास्तविकता के यथातथ्य फोटोग्राफिक चित्रण को यथार्थवाद नहीं मानते। यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है।

प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन (लखनऊ, **1936**) के सभापति पद से दिए उनके भाषण से उनकी यथार्थवाद विषयक मान्यता थोडी स्पष्ट होती है- ***"हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बैचेनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"***

प्रेमचंद यथार्थवाद के संदर्भ में आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद का अर्थ ग्रहण करते हैं, जो कि उनके गोदान-पूर्व के रचना कर्म में भी दिखाई देता है। प्रेमचंद के विचारों के आधार पर उनका यथार्थवाद स्पष्ट नहीं होता, उसकी असली परीक्षा उनकी रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही हो सकती है। 'सेवासदन' **(1918)** से लेकर गोदान' **(1936)** तक की औपन्यासिक यात्रा में प्रेमचंद का यथार्थवाद निरंतर परिपक्व और परिष्कृत होता गया है।

सेवासदन (1918)

'सेवासदन' उनका पहला महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें नायिका सुमन मध्यवर्ग की सामाजिक-आर्थिक कठिनाइयों के चलते अपनी से दुगुनी उम्र के दुहाजू गजाधर के साथ ब्याह दी जाती है। अनमेल विवाह और पति की शंकालु प्रवृत्ति से विद्रोह करके सुमन अपनी स्वतंत्रता और सम्मान' के लिए वेश्यावृत्ति का रास्ता अख्तियार कर लेती है। वेश्या जीवन के बहाने यह उपन्यास स्त्री की सामाजिक-आर्थिक पराधीनता की समस्या को उठाता है।

'सेवासदन' की कहानी में एक तीखा व्यंग्य है. उन सामाजिक स्थितियों पर जो कृष्णचंद्र जैसे भले इन्सानों को इस पूँजीवादी समाज में पथभ्रष्ट होने को मजबूर करती है। यहाँ दहेज के लोभी और झूठे दिखावे में फँसे मध्यवर्गीय शिक्षित युवा वर्ग की भी आलोचना है जो आधुनिक होने का दम भरता हुआ भी मध्यकालीन संस्कारों में जकड़ा है।

सेवासदन अपने युग की प्रमुख सामाजिक समस्या को उठाता है; जबकि दहेज, अनमेल विवाह, पूंजीपतियों की भोग-वृत्ति तथा पुरुष-वर्चस्व जैसी अन्य समस्याएँ मुख्य समस्या को घनीभूत करती है। प्रेमचंद ने सामाजिक संबंधों की छानबीन कितनी गहराई से की है, यह इसी से जाहिर होता है कि उन्होंने वेश्यावृत्ति की मूल प्रेरक शक्तियों को कठघरे में खड़ा कर दिया है

उपन्यास में गजाधर का हृदय-परिवर्तन और उसके द्वारा सेवासदन की स्थापना वेश्या जैसी बड़ी समस्या के काल्पनिक एवं आदर्शवादी समाधान ही प्रतीत होते हैं।

प्रेमाश्रम (1922)

यह उपन्यास गाँधीजी के असहयोग आंदोलन की ऐतिहासिक परिस्थिति में लिखा गया था। किसान जीवन पर आधारित होने के कारण यथार्थवादी साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेमाश्रम पहली ऐसी प्रमुख रचना है, जो हिंदी-उर्दू साहित्य में इतने साहस से एक नये नायक-किसान को लायी। पहले अधिकतर ऊँची सामाजिक स्थिति वाले लोगों को ही नायकों के योग्य माना जाता था। उपन्यास के क्षेत्र में यह यथार्थवादी नायक की प्रतिष्ठा थी।

प्रेमाश्रम में जमीदार ज्ञानशकर के खिलाफ लखनपुर के किसानों मनोहर, बलराज और बिलासी का प्रतिरोध दिखाया गया है। यह प्रतिरोध अंग्रेजी साम्राज्यवाद के साथ भारतीय सामंतवाद के अनैतिक गठजोड़ की भी असलियत बयान करता है। उपन्यास में प्रेमचंद जिस ढंग से गाँवो का वर्ग संघर्ष चित्रित करते हैं और सत्याग्रह की असफलता दिखाते है, उसमे उस दौर की सबसे बड़ी विचारधारा अर्थात् गाँधीवाद की आलोचना भी निहित है।

प्रेमाश्रम राजनीति और समाज की प्रतिनिधि परिस्थितियों का चित्रण करता है। डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं- ***"प्रेमचंद के दृष्टिकोण की खूबी इस बात देख सकते हैं कि कौन-सी चीज मर रही है और कौन-सी चीज उग रही है. इस 'संक्रांति को स्पष्ट में है कि यह समाज में यहाँ कुछ शक्तियाँ पतनशील है तो कुछ शक्तियाँ उदयशील भी।"***

निश्चित रूप से उपन्यास में ज्ञानशंकर और ज्यालासिंह जैसे जमींदार मरणशील शक्ति हैं और लखनपुर के किसान उदीयमान शक्ति हैं। प्रतिनिधि चरित्रों के लिहाज से ज्ञानशंकर सामंतवाद और पूँजीपति वर्ग का वर्ग-चरित्र है, जबकि मनोहर, बलराज और बिलासी में परिवर्तित होते किसान वर्ग की छवि है।

'प्रेमाश्रम' का अंत आलोचनात्मक यथार्थवाद के विपरीत जाता हुआ है। ज्ञानशंकर, सुक्खु चौधरी, इजाद हुसैन और बिसेसर साह जैसे नेगेटिव पात्रों का हृदय परिवर्तन स्वाभाविक और यथार्थवादी नहीं है। पूरे कथानक में प्रभावहीन भूमिका निभाने वाले प्रेमशंकर द्वारा 'प्रेमाश्रम' की स्थापना समस्या का आदर्शवादी समाधान प्रतीत होता है।

रंगभूमि (1925)

रंगभूमि **(1925)** भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की ऐतिहासिक प्रातिनिधिक परिस्थितियों पर आधारित उपन्यास है। केंद्रीय कथा में पांडेपुर गाँव के अंधे भिखारी सूरदास का अंग्रेजी साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध संघर्ष दिखाया गया है जबकि दूसरी कथा में उदयपुर रियासत के सामंती यथार्थ का चित्रण है।

पूँजीपति जनसेवक के हथकंडों से अपनी जमीन बचाने के लिए सूरदास सत्याग्रह करता हुआ शहीद हो जाता है। यह साम्राज्यवाद और पूंजीवाद से संघर्ष करते नायक की यथार्थवादी त्रासदी या असफलता है। दूसरी कहानी सामंतवर्ग की कायरता, लोभ और अंतर्विरोधों को उद्घाटित करती है। देश के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में आते परिवर्तन,

अहिंसा और सत्याग्रह के विरुद्ध सिर उठाता उग्रवाद, व्यवस्था के खिलाफ जनता का प्रतिरोध, स्त्री का राजनीति में प्रवेश, गाँवों में औद्योगीकरण और पूंजीवाद का प्रवेश, परिवार और गॉव जैसी इकाइयों का ह्रास तथा इन सबके फलस्वरूप होने वाला परिवर्तन और संक्रमण रचना में प्रातिनिधिक परिस्थितियों की सृष्टि करता है।

रंगभूमि के ज्यादातर पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि जान पड़ते हैं। क्लार्क यदि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतिनिधि है तो जॉन सेवक पूंजीवाद की चरित्रहीनता का प्रतीक है। महेंद्रप्रताप, भरतसिंह और रानी जाह्नवी सामंतवाद के वर्ग-चरित्र बनकर उभरते हैं। इन सबके बीच अंचे, अनपढ़, दलित और भिखारी सूरदास को एक 'टाइप' पात्र के रूप में लाना रंगभूमि का सबसे बड़ा यथार्थवादी पहलू है।

सूरदास में परंपरागत किसान की छवि के साथ-साथ भावुकता, प्रतिरोध, अपराजेय उत्कट आशावाद तथा भविष्य के प्रति रचनात्मक कल्पना जैसे वैयक्तिक गुण भी मौजूद हैं। ये सब मिलकर उसे होरी के बाद प्रेमचंद का दूसरा महत्वपूर्ण 'टाइप पात्र बनाते हैं। उपन्यास के अंत में सूरदास को पराजित दिखाना 'यथार्थवाद की विजय' का उदाहरण है. इस संबंध में शिवकुमार मिश्र का संकेत महत्वपूर्ण है- ***"फिर भी चूंकि प्रेमचंद पूरी ईमानदारी के साथ वस्तुस्थिति से अपना संबंध रखते थे, इसलिए उन्होंने सूरदास को पराजित दिखाया। यह यथार्थवाद की विजय थी। एंगेल्स ने इसी को बालजाक के संदर्भ में ट्रायम्फ ऑफ रियलिज्म' कहा था।"***

पूर्ववर्ती उपन्यासों की तरह 'रंगभूमि के अंत में कोई काल्पनिक या आदर्शवादी समाधान नहीं है, इन सब कारणों से यह तुलनात्मक रूप से बेहतर यथार्थवादी उपन्यास है।

कायाकल्प (1926)

कायाकल्प यथार्थवाद की दृष्टि से एक कमजोर रचना ही मानी जाएगी। इसमें जहाँ एक ओर रानी देवप्रिया की पूर्वजन्म की कल्पना से युक्त कहानी है तो दूसरी ओर जगदीशपुर रियासत का सामंती यथार्थ। रानी देवप्रिया का चरित्र सामंतवाद का वर्ग-चरित्र है, वह अपने हर नये प्रेमी को पूर्व-जन्म का पति स्वीकार कर लेती है, रचना के अंत में वह भोग-विलास छोड़कर अपना जो कायाकल्प करती है, वह विश्वसनीय नहीं लगता। चकघर के चरित्र में राजनेताओं और समाजसेवकों के अंतर्विरोध स्वाभाविक लगते है। किन्तु अंत में उसका भी गृह त्याग कर महात्मा का वेश धारण कर लेना हदय परिर्वतन का ही उदाहरण है, जिसके कारण उपन्यास का समापन कृत्रिम, अव्यवहारिक और यांत्रिक प्रतीत होता है।

उपन्यास में किसी भी पात्र को टाईप या प्रतिनिधि चरित्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। प्रेमचंद की यथार्थवादी यात्रा में यह उपन्यास एक कमजोर कड़ी ही सिद्ध होता है।

निर्मला (1927)

सेवासदन के बाद स्त्री जीवन की समस्या पर लिखा गया प्रेमचंद का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'निर्मला' है। निर्मला की करुण कहानी को हमारे मध्यवर्गीय समाज में कहीं भी, कभी भी घटते हुऐ देखा जा सकता है, यह उसका एक यथार्थवादी पहलू है।

पिता की आकस्मिक मृत्यु के बाद भारी दहेज न जुटा पाने के कारण निर्मला का तीन बेटों के बाप, अघेड और विधुर तोताराम से विवाह भी एक त्रासदी है और अंत में अपने ही किशोर पुत्र को लेकर तोताराम की संदेह-वृत्ति के कारण मानसिक संताप में घुलती निर्मला की मृत्यु भी एक त्रासदी है। प्रेमचंद का यह पहला दुखांत उपन्यास है, जो कोई आदर्श या समाधान प्रस्तुत नहीं करता। दहेज प्रथा और अनमेल विवाह के मूल में भी यहाँ स्त्री की सामाजिक आर्थिक पराधीनता की समस्या को ही उभारा गया है।

निर्मला मध्यवर्गीय स्त्री की विवशता को चित्रित करने वाला पात्र है जिसका अन्तर्बाह्य विश्लेषण तथा मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व स्वाभाविक होने के कारण समझ में आने वाला है। अंत में मुंशी तोताराम का पश्चाताप हृदय परिवर्तन का उदाहरण है लेकिन वह

परिस्थिति सापेक्ष होने के कारण यथार्थवाद की सीमा में स्वीकार्य है।

गबन (1931)

मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन और अंतर्विरोधों को उजागर करने के कारण 'गबन' का कथानक यथार्थवादी प्रतीत होता है। 'आभूषण मंडित संसार' से आई अपनी पत्नी जालपा की चंद्रहार की ख्वाहिश पूरी करने के लिए उपन्यास का नायक रमानाथ सरकारी राशि का गबन करने के बाद इधर-उधर भागता फिरता है।

रमानाथ-जालपा की कहानी में मध्यवर्ग की आर्थिक विषमता, झूठा दिखावा, नैतिक पतन तथा दांपत्य का विघटन जैसे यथार्थ संदर्भ हैं तो दूसरी ओर देवीदीन खटिक की कथा में स्वाधीनता आंदोलन के चित्रण के साथ राजनेताओं, पूंजीपतियों और पुलिस व्यवस्था की आलोचना को शब्द दिये गये हैं।

उपन्यास 'गबन' के पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र है। नायक रमानाथ आर्थिक विषमता से पीडित मध्यवर्गीय नवयुवकों का प्रतिनिधि है जिसके रूप में लेखक ने अच्छाई बुराई तथा संकल्पों-विकल्पों का यथार्थवादी चित्रण किया है। रमानाथ जीवन भर उच्च आकांक्षा और आर्थिक तथा व्यक्तित्वगत हीनताओं के संघर्ष से पीडित रहता है। उसके इस संघर्ष को तीव्र रूप में दिखाने के लिए लेखक को अपनी ओर से प्रयास नहीं करना पड़ता। पात्र स्वयं एक बार उसमें उलझकर अपने अशक्त, आडंबरप्रिय संस्कारों के कारण अनेक विषम परिस्थितियों में उलझता जाता है, छूटने के बजाय और फँसता जाता है और इसी क्रम में रमानाथ के मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व से उपन्यास में यथार्थवाद की सृष्टि होती है। जालपा में मध्यवर्गीय स्त्री की आधुनिक छवि निहित है। देवीदीन सफेदपोश बुर्जुआ नेताओं के अंतर्विरोधों को पहचानने वाली जनता का प्रतीक है जो मोहभंग का शिकार है।

इस प्रकार कथानक, पात्रों और समस्याओं की दृष्टि से गबन एक यथार्थवादी रचना मानी जा सकती है।

कर्मभूमि (1932)

'कर्मभूमि' प्रेमचंद का एक बहुआयामी उपन्यास है। स्वाधीनता आंदोलन के युगीन संदर्भों, गाँधी-इरविन समझौता, अंबेडकर का मंदिर प्रवेश आंदोलन, सविनय अवज्ञा जैसी प्रतिनिधि परिस्थितियों को यह उपन्यास कथानक के भीतर परोक्ष रूप से चित्रित करता है।

बलात्कार पीड़िता मुन्नी का संघर्ष, अछूतों का मंदिर प्रवेश और सुखदा का भूमि-आंदोलन जैसी घटनाएं जनता के संघर्ष और प्रतिरोध को व्यंजित करती है, जनता की जीत यहाँ चिर-संघर्ष से प्राप्त होने के कारण आदर्शवादी नहीं लगती। उपन्यास का अंत किसी हृदय परिवर्तन और कृत्रिम समाधान को प्रस्तुत नहीं करने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

'कर्मभूमि के स्त्री पात्र पुरुष पात्रों की तुलना में अधिक संघर्षशील, परिपक्व और प्रतिरोध की चेतना से युक्त है। मुन्नी गोरे सैनिकों से बलात्कार की शिकार होने के बाद प्रतिरोध से भी आगे प्रतिशोध तक जाती है। रेणुका और सुखदा जैसे पात्र नारी की बदलती संघर्षशील छवि को प्रस्तुत करते हैं। अमर सलीम की दोस्ती तथा अमर-सकीना का प्रेम सांप्रदायिक सद्भावना का प्रतीक बन कर उभरता है।

नायक अमरकांत के रूप में प्रेमचंद ने राजनीति का अंतर्विरोधी चरित्र पेश किया है जिसमें देशभक्ति और समाजसेवा जैसे आदर्शों के बावजूद अवसरवाद, कायरता, चालाकी और समझौतापरस्ती जैसी कमजोरियों भी है। महंतजी का चरित्र सामंतवाद एवं पूँजीवाद के अनैतिक गठजोड़ का प्रतीक है।

मैनेजर पांडेय के शब्दों में यह उपन्यास ***"गरीब किसानों, मजदूरों, स्त्रियों और दलितों के व्यापक जागरण, आंदोलन; उसके दमन और प्रतिरोध की जटिल समग्रता का आख्यान है।"***

गोदान (1936)

अंतिम उपन्यास 'गोदान' न केवल प्रेमचंद का बल्कि समग्र हिंदी साहित्य में यथार्थवाद का उच्चतम प्रतिमान है। कुछेक अंतर्विरोधों असंगतियों के बावजूद यह आलोचनात्मक यथार्थवाद को उसकी आत्यंतिक सीमाओं तक अभिव्यक्त करता है।

गोदान' में दो कथाएं समानांतर स्तर पर चलती है। शहर की कहानी ग्रामीण यथार्थ को अधिक घनीभूत करने के उद्देश्य से लायी गयी अनुभव होती है। प्रेमचंद ने गोदान में किसान-जीवन का समग्र यथार्थ उसके गुण-दोषों के साथ चित्रित किया है। बेलारी गाँव का गरीब किसान होरी जीवन में एक बार नहीं, बल्कि कई मौतें मरता है फिर भी, उसकी गाय रखने की छोटी-सी 'साघ अधूरी ही रहती है।

समस्या विश्लेषण की दृष्टि से किसान की गरीबी और कर्ज उपन्यास की मूल समस्या है, जिसके मूल में आर्थिक विषमता ही मुख्य कारण है। प्रेमचंद गोदान' में दिखाते हैं कि गरीब को घेरने वाली प्रतिगामी शक्तियों कितनी एकजुट है और किसान किस कदर निपट अकेला है। प्रेमचंद यहाँ जमींदारों-महाजनों के प्रति ही निर्मम नहीं है, अपने प्रिय पात्र किसान की धर्मभीरू कायरता, सहिष्णुता और समझौतापरस्ती के प्रति भी आलोचनात्मक रवैया अपनाते हैं। अपने प्रिय नायक होरी के प्रति यह निर्ममता प्रेमचंद जैसा यथार्थवादी ही दिखा सकता था।

मुख्य समस्या के इर्द-गिर्द यह उपन्यास सामंतवाद, पूंजीवाद, ब्राह्मणवाद, स्त्री व दलित-मानवता का शोषण जैसी अन्य समस्याओं की भी गहरी पड़ताल कार्य-कारण संबंधों की रोशनी में करता है।

राय साहब अमरपाल सिंह पतनोन्मुख जमींदारी प्रथा अर्थात् सामंतवाद के, मि० खन्ना पूंजीपति वर्ग के तथा झिंगुरी सिंह, पडित दातादीन और पटेश्वरी ग्रामीण महाजनी सभ्यता के प्रतिनिधि वर्गीय पात्र है, जिनका चरित्र-चित्रण ही उनकी यथार्थवादी आलोचना है। इन सबके बीच होरी, धनिया और गोबर के चरित्र में प्रेमचंद ने वर्ग और व्यक्ति दोनों की विशेषताएँ उनके समस्त गुण-दोषों के साथ रखकर अपूर्व यथार्थवादी ' टाइप' चरित्रों का सृजन किया है।

होरी जहाँ आम भारतीय किसान का 'प्ररूप' (टाइप) है, वहीं उसमें कुछ व्यक्तिगत निजी विशेषताएं भी है। उसका अंतर्बाह्य विश्लेषण और मानवीय अंतर्विरोध हर दृष्टि से यथार्थ एवं स्वाभाविक लगते हैं। यही होरी वर्ग चरित्र से अलग जाकर जब गौहत्या के अपराधी भाई हीरा के खेतों की रखवाली करता है और गर्भवती झुनिया को स्वीकार करता है तो उसकी निजी विशेषताएँ भी प्रकट होती है।

गोपाल राय के अनुसार ***"धनिया एक प्रारूपिक किसान-पत्नी है, गरीबी की मार से बुरी तरह पिटी हुई, जीवन की साधारण सुविधाओं से भी वंचित अभावों के बीच जीने वाली असमय वृद्ध भारतीय कृषक नारी।"***

लेकिन यही धनिया जब मर्दों से आगे बढ़कर अन्याय का प्रतिरोध करती है, गर्भवती विधवा झुनिया को बहू स्वीकारती है और पोता होने पर गला फाड़कर सोहर गाती है तथा सिलिया चमारिन का साथ देती है तो उसमें आधुनिक, क्रांतिकारी व्यक्तिगत छवि के दर्शन भी होते हैं।

गोबर के रूप में प्रेमचंद ने तर्कशील, विद्रोही, किसान से मजदूर बनती, गाँव से शहर को विस्थापित होती नई युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र गढ़ा है।

प्रतिनिधि चरित्रों को 'गोदान' का रचनाकार भारतीय इतिहास की ऐतिहासिक, परिवर्तनशील, संक्रांतियुक्त परिस्थितियों के बीच खड़ा करता है। गोदान में एक ओर सामंतवाद, उपनिवेशवाद और महाजनी सभ्यता की मरणासन्न अवस्था का चित्रण है तो गोबर के रूप में आने वाले युग की प्रसव-कथा का संकेत भी निहित है।

मातादीन और सिलिया के प्रेम-प्रसंग में ब्राह्मण-दलित संघर्ष तथा गोबर झुनिया की 'लिविंग टुगेदर' संस्कृति ऐसे नये संदर्भ है जो 'गोदान' में सामाजिक परिवर्तन और पाश्चात्य संक्रमण की ओर इंगित करते हैं।

'टाइप' पात्रों और परिस्थितियों के बाद उपन्यास का ट्रेजिक अंत गोदान के यथार्थवाद की एक बड़ी उपलब्धि है। वैसे तो 'गोदान' के हरेक पृष्ठ पर उसके नायक होरी की मौत लिखी है लेकिन अंतिम अध्याय में ककड़ खोदते हुए लू लगने से होरी जब मरता है और धनिया उसके ठंडे हाथ में बीस आने पैसे रखकर उससे गोदान' करवाती है तो जैसे सुधार के स्वप्न और आदर्शों की कल्पनाएं चूर-चूर हो जाती है।

पी सी. जोशी के शब्दों में ***'मृत्यु के समीप होरी का कथन एक यथार्थ के चित्रण की पराकाष्ठा है जिसके आघात से ग्राम के पुनरुद्धार की कल्पना के महल पूरी तरह बह जाते हैं।"***

'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' की तरह 'गोदान' का अंत किसी पात्र का यांत्रिक हृदय-परिवर्तन अथवा किसी समस्या का काल्पनिक समाधान प्रस्तुत नहीं करता। इस तरह प्रेमचंद के उपन्यासों में गोदान की संरचना और उसका यथार्थवादी अंत आलोचनात्मक यथार्थवाद की दृष्टि से सबसे सशक्त माना जा सकता है।

निष्कर्ष

इस तरह, प्रेमचंद के कथा साहित्य विशेषकर, उपन्यासों पर दृष्टि डालने के बाद उन्हें हिंदी में यथार्थवाद का युग प्रवर्तक रचनाकार मानना उचित होगा। उत्तर भारत की ग्रामीण और नगरीय सभ्यता का यथार्थ, गरीब और किसान वर्ग को नायकत्व प्रदान करना, जनता की तीव्र समस्याओं से गहरा जुडाव, साम्राज्यवाद की आलोचना, बदलते सामाजिक यथार्थ की संक्रांति का चित्रण आदि ऐसी विशेषताएं हैं जो उन्हें टॉल्सटाय की तरह एक महान यथार्थवादी कलाकार का दर्जा देती है।